# शिक्षा का अधिकार कानून : सिर्फ़ एक झुनझुना

केंद्र सरकार ने छः से 14 वर्ष तक की उम्र वाले बच्चों के लिए शिक्षा का अधिकार कानून लागू कर दिया है। वैसे बहुत पहले ही सरकारों को ऐसी 'घोषणा' कर देनी चाहिए थी, पर उन्होंने न की तो सोनिया गांधी की मनमोहन सरकार ने कर दी। अब प्राथमिक शिक्षा अनिवार्य हो गई। कोई न भी पढ़ना चाहता हो और इसकी बजाय घास छीलना, पशु चराना, छोटी-मोटी मज़दूरी करना एवं शहरों और कस्बों में ढाबों-होटलों में काम करना, मोटर मेकेनिक के यहां काम करना, और भी नाना प्रकार के काम करना, जैसे कचरा बटोरना और उसे कबाड़ी के पास बेचने आदि में लगा हो तो क्या सरकार जबरन उन्हें स्कूलों में दाखिला देगी? फ़िर जो काम वे करते हैं, कौन करेगा? वैसे बच्चे जो बीस-तीस रुपये की दिहाड़ी रोज घर लाते हैं, क्या स्कूलों में पढ़ने और घटिया दर्जे का खाना खाने जायेंगे?

कहा जा रहा है कि यह विधेयक वर्षों से धूल चाट रहा था, पर महाकल्याणकारिणी सोनिया की मनमोहिनी सरकार ने इसे कानून बना दिया और अब इसे अमल में भी लायेंगे। इस देश में प्राथमिक शिक्षा क्या, हर तरह की शिक्षा का बुरा हाल है। कहीं शिक्षक हैं तो बच्चे नहीं और कहीं बच्चे हैं तो शिक्षक नहीं। देश भर में मान्यता प्राप्त प्राथामिक स्कूलों की संख्या 13 लाख है। शिक्षक हैं कुल सात लाख प्रशिणार्थी और अप्रशिक्षत मिला कर। यानी एक स्कूल पर एक शिक्षक भी नहीं पड़ा। ऐसे में बहुतेरे स्कूल शिक्षकविहीन होंगे, भवनविहीन तो न जाने कितने हैं। ऐसे में आसानी से यह सोचा जा सकता है कि देश के नौनिहालों को सरकार किस तरह से शिक्षा दिला रही है।

अब सरकार कहती है कि शिक्षा का अधिकार कानून लागू हो चुका है, इसलिए प्रति 30 बच्चों पर एक शिक्षक होंगे। साथ ही पहली से लेकर पांचवी तक के बच्चों के लिए घर से एक किलोमीटर के दायरे में स्कूल होना चाहिए। इसके लिए अलग से पूरी चाक-चौबंद व्यवस्था करनी होगी। अभी ही लगभग सभी राज्यों में शिक्षकों की भारी कमी है, पर सरकार शिक्षकों को बहाल नहीं करती। खानापूर्ति करने के लिए कहीं शिक्षा मित्र तो कहीं गेस्ट टीचर लगा रखे हैं जिनकी नौकरी अधरझूल में होने के कारण वे भी बच्चों को पढ़ाने के बजाये उनका ध्यान स्थाई नौकरी ढूंढने पर होता है।

सवाल है, सरकारें पहले शिक्षकों के रिक्त पदों पर बहाली क्यों नहीं करती? शिक्षा का मौजूद ढांचा जो पूरी तरह चरमरा गया है, उसे दुरुस्त क्यों नहीं करती? जहां तक शिक्षकों के खाली पड़े पदों पर भर्ती का सवाल है, इसे छोड़ भी दें तो सरकार मौजूदा शिक्षकों को पढ़ाई से अलग कामों जैसे पोलियो की दवा पिलाना, चुनाव ड्यूटी, जनगणना आदि में लगाये रखती है। इससे ईमानदारीपूर्वक पढ़ाने की इच्छा रखने वाले शिक्षक भी अपना काम नहीं कर पाते।

सरकारी शिक्षा की गुणवत्ता का इतना बुरा हाल है और संसाधनों की इतनी कमी है कि अब तो देहातों में भी प्राइवेट स्कूल खुल चुके हैं और धड़ल्ले से खुल भी रहे हैं जिनमें अर्द्धशिक्षित युवक-युवतियां पढ़ाती हैं। पर वहां फर्नीचर आदि की सुविधा होती है। ग्रामीणों को लगता है कि ये स्कूल सरकारी स्कूल से बेहतर हैं और अपने बच्चों को वहां भेजते हैं। ग्रामीण क्षेत्रों में तो ऐसे विद्यालयों की भी कोई कमी नहीं जो मात्र एक ही शिक्षक के भरोसे चल रही हैं। अगर कभी शिक्षक महोदय को छुट्टी पर जाना पड़ा तो विद्यालय बंद हो जाता है। इसी तरह की शिक्षा व्यवस्था अधिकांश गांवों में चल रही है। किसी को विश्वास न हो तो जा कर देख ले।

शहरों-कस्बों में भी सरकारी प्राथमिक शिक्षा की हालत बहुत बुरी है। यही कारण है कि लोग़ अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में ही भेजना पसंद करते हैं जो अपने आप को कहते तो हैं अंग्रेज़ी माध्यम के स्कूल, पर वहां ढंग से हिंदी भी नहीं पढ़ाई जाती। हां, जो फाइव-स्टार टाइप के स्कूल हैं, उनकी बात अलग है। उन स्कूलों में सिर्फ उच्च मध्यम वर्ग और उच्च वर्ग के बच्चे ही पढ़ सकते हैं।

लेकिन निम्न वर्ग के लोग़ों की यह हैसियत नहीं कि वे अपने बच्चों को प्राइवेट स्कूलों में पढ़ा सके। इनके बच्चे हर तरह से साधनविहीन सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं और बहुत तो वहां भी नहीं पढ़ पाते। वे मज़दूरी करते हैं। सरकार यह सोचती है कि निम्न वर्ग के बच्चे दोपहर की खिचड़ी की लालच में स्कूल आयेंगे। ठीक है। आयेंगे, मगर सिर्फ़ खिचड़ी खाने और खाने के बाद चल देंगे। इधर स्कूलों में दोपहर का भोजन दिया जाना भी बहुतों की अवैध कमाई का जरिया बन गया है। काले बाज़ार में बच्चों के लिए आया अनाज बेच दिया जाता है और उसकी जगह घटिया सड़ा हुआ अनाज ले लिया जाता है।

कई जगह ऐसे अनाज से बने भोजन को खाने से बच्चे बीमार पड़ चुके हैं। सरकार कहती है कि बच्चों को पैकेटबंद भोजन दिया जाय तो कभी कहती है कि स्वयंसेवी संस्थाओं के माध्यम से भोजन दिया जाये। कुछ जगहों पर स्वयंसेवी संस्थाओं को यह जिम्मेदारी दी गई। पर उनके द्वारा सप्लाई किये भोजन को खाने के बाद काफी बच्चे बीमार पड़ गये। इस तरह, यह साबित हो गया है लूटमार की व्यवस्था में दोपहर के भोजन की लालच में पढ़ाई करने के लिए तो बच्चे आने से रहे। हमारे देश में लगभग पांच लाख गांव हैं। इनमें से बहुत कम ही गांव हैं जिनमें सड़क, स्कूल, पोस्ट आफिस, स्वास्थ्य केंद्र, बिजली आदि आधारभूत सुविधाएं मौजूद हों। ज़्यादातर गांवों में अभी भी खेत की मेड़ों से होकर जाना पड़ता है। स्कूल पांच-पांच, सात-सात किलोमीटर दूर हैं। गांवों के बड़े और संपन्न लोग़ तो अपने बच्चे को किसी कस्बे अथवा निकट के शहर में अपने बच्चों को पढ़ने के लिए हॉस्टलों में भर्ती करा देते हैं, पर ग़रीब कहां जायें? यह एक ऐसा सवाल है जिस पर सरकार का ध्यान नहीं है। जब तक गांवों में आधारभूत संरचना का निर्माण नहीं होता, वहां शिक्षा का प्रसार एक खामख्याली से ज़्यादा नहीं है। सरकार ने शिक्षा का अधिकार कानून बना कर अपने गले में एक और तमगा लटका लिया है। ऐसे तमगे कितने ही लटकाये सरकार, पर आम लोग़ों को इसका कोई फायदा होने वाला नहीं है। सरकार जब तक व्यवस्था करेगी, तब तक पांच साल पूरे हो जायेंगे और फ़िर नये चुनाव की घोषणा हो जायेगी।

वर्तमान सरकार ने ऐसी नीतियां अपना ली है कि प्राथमिक शिक्षा हो या उच्च शिक्षा, सबका बंटाढार हो रहा है। निजीकरण को इतना बढ़ावा दिया जा रहा है कि शिक्षा एक बहुत बड़ा उद्योग बन गई है। अच्छे प्राइवेट स्कूलों में नर्सरी कक्षा के लिए जांच-परीक्षा ली जाती है और पचास हज़ार से लेकर एक-डेढ़ लाख रुपये डोनेशन देने पर दाखिला होता है। सरकार इस पर रोक लगाने के बारे में नहीं सोचती। उन स्कूलों में जाते भी हैं करोड़पति अभिभावक। इसी तरह प्राइवेट विश्वविद्यालय धड़ल्ले से खोले जा रहे हैं। इन विश्वविद्यालयों में एक ही बार में लाखोंलाख रुपये फ़ीस के रूप में ले लिये जाते हैं। अब सरकार विदेशी विश्वविद्यालयों को देश में अपनी शाखायें खोलने की छूट देकर शिक्षा के क्षेत्र में लूट को बढ़ावा देने जा रही है।

ऐसी लुटेरी सरकार ने शिक्षा के अधिकार की जो घोषणा की है, वह एक झुनझुना है, छलावा है। वर्तमान व्यवस्था में सरकार शिक्षा के क्षेत्र में आधारभूत सुविधा मुहैया करा पाने में पूरी तरह अक्षम है, क्योंकि उसकी प्राथमिकता है लूट। लूट चाहे जहां से और जैसे संभव हो।

**– प्रतिनिधि**

# नक्सलवाद : जंगल में लगी आग

दांतेवाड़ा में नक्सलवादियों ने सब से बड़ा हमला कर सीआरपीएफ के 76 जवानों की हत्या कर दी। ये जवान जंगलों में ऑपरेशन ग्रीन हंट यानी नक्सलियों के शिकार अभियान पर निकले थे। कहा जा रहा है कि नक्सलियों ने ज़मीन में प्रेशर बम लगा दिया था जिसके कारण इतनी भारी संख्या में सीआरपीएफ के जवान मारे गये। जो बच गये, उन्हें नक्सलियों ने गोलियों से भून दिया, हथियार समेट लिए और सीआरपीएफ की सहायता के लिए आये हेलिकॉप्टर पर भी गोलियां बरसाई। दरअसल नक्सलियों ने ऐसी घेराबंदी कर दी थी कि अर्द्धसैन्य बल उनकी जाल में फंस गया।

यहां सवाल यह उठता है कि मरने वाले कौन थे और मारने वाले कौन थे। मरने वाले भी साधारण और ग़रीब घरों से आने वाले युवक ही थे। अगर इन्हें ऊंची शिक्षा मिली होती और कहीं रोज़गार मिला होता अथवा अच्छी खेती-बाड़ी ही होती और खाने-पीने का इंतजाम होता तो वे फोर्स में भर्ती होने नहीं जाते। इन्हें जनता का दुश्मन नहीं कहा जा सकता।

दूसरी तरफ, जैसा कि सभी जानते हैं कि मारने वाले सदियों से बेइंतहा शोषण के शिकार आदिवासी थे जो अब राजनीतिक रूप से सजग और संगठित हो चुके हैं और शोषण पर आधारित इस लुटेरी व्यवस्था के खिलाफ़ लड़ाई लड़ रहे हैं। अगर इन्होंने जवानों को न मारा होता तो खुद मारे जाते, क्योंकि ये जवान ऑपरेशन ग्रीन हंट के तहत उनका शिकार करने निकले थे। ऐसे में नक्सलियों के सामने अस्तित्व का संकट था। क्या विडंबना है कि जंगलों में जानवरों के शिकार पर सरकार ने रोक लगा रखी है, पर जंगल में रहने वाले मनुष्यों का शिकार करने के लिए अर्द्धसैन्य बल भेज रही है और चाहती है कि उसका विरोध न हो। पर क्या यह संभव है? जब किसी पर अस्तित्व का संकट आता है तो वह कुछ भी कर गुजरने को तैयार हो जाता है। यही हालत है छत्तीसगढ़ और लालगढ़ जैसे इलाकों में रहने वाले आदिवासियों की जिन्हें सैंकड़ों बरसों सें लूटा जाता रहा है और जिनकी मां-बहनों के साथ खिलवाड़ करने के साथ ही उन्हें जानवर से भी बदतर समझा जाता रहा है। ऐसी स्थिति में अगर ये हथियाबंद हो सरकार के खिलाफ़ खड़े हो जाते हैं तो इसमें आश्चर्य की क्या बात है!

अभी कुछ ही दिन हुए हैं, गृह मंत्री पी. चिदंबरम पश्चिम बंगाल में लालगढ़ के दौरे पर गये थे और उन्होंने नक्सलियों को देश का नंबर-1 दुश्मन घोषित किया था। उन्होंने वहां कहा था कि जैसे भी हो, नक्सलवाद का दमन किया जायेगा। उन्होंने यह उम्मीद प्रकट की थी कि अगले तीन साल में नक्सलवादियों पर काबू पा लिया जायेगा। पश्चिम बंगाल में इस समस्या पर कड़ाई से पेश न आने के लिए उन्होंने मुख्यमंत्री बुद्धदेव भट्टाचार्य को भी झिड़की दी जिस पर नाराज़ होकर भट्टाचार्य ने भी चिदंबरम पर वार किया। बहरहाल, नक्सलियों ने ऑपरेशन ग्रीन हंट का अच्छा-खासा जवाब दे दिया है। इसके पहले भी उड़ीसा में उन्होंने धमाका किया था। छोटे-मोटे धमाके तो ये रोज़ ही करते रहते हैं जिसे सरकार ने भी रूटीन कार्रवाई मान लिया है।

कुछ दिनों पहले सरकार ने नक्सलवादियों से बातचीत करने की इच्छा भी जताई थी जिस पर नक्सलवादियों ने भी सकारात्मक प्रतिक्रिया व्यक्त की थी। सरकार ने नक्सलवादियों से कम से कम 72 घंटे तक कोई हिंसात्मक कार्रवाई न करने को कहा था। इसके लिए नक्सलवादी तैयार हो गये। पर बाद में सरकार के सलाहकारों ने कहा कि बातचीत का रास्ता ठीक नहीं है, क्योंकि बातचीत के बाद अगर नक्सलवादी हिंसा छोड़ने को तैयार होते हैं तो सरकार भी उनके खिलाफ़ कार्रवाई नहीं करेगी और वे इसका लाभ अपने आप को और भी ज़्यादा मजबूत करने में उठायेंगे।

नक्सलवाद को सरकार भी सिर्फ़ कानून-व्यवस्था का मामला नहीं मानती। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह भी यह स्वीकार कर चुके हैं कि नक्सलवाद के पीछे गहरे सामाजिक-आर्थिक कारण हैं और नक्सलियों की एक 'विचारधारा' भी है।

स्पष्ट है कि वह विचारधारा एक राजनीतिक विचारधारा है जिसे गोला-बारूद से नहीं खत्म किया जा सकता। नक्सलवाद जंगल में लगी आग है और इस आग का दायरा बढ़ता ही जा रहा है। सरकार पहले मानती थी कि देश के 13 राज्य नक्सलवाद से प्रभावित हैं, पर अब सरकार का मानना है कि 20 राज्यों में नक्सलवादी फैल चुके हैं। सबसे बुरी तरह प्रभावित राज्यों में बिहार, पश्चिम बंगाल, झारखंड, छत्तीसगढ़, उड़ीसा, आंध्रप्रदेश आदि आते हैं। नक्सलवादियों का सांगठनिक ढांचा काफ़ी मजबूत है। जहां भी उनका आधार है, वहां वे ग़रीबों-उत्पीड़ितों के बीच रच-बस जाते हैं और उनके बच्चों के लिए स्कूल और चिकित्सा की व्यवस्था भी करते हैं। सबसे बढ़ कर वे उन्हें निडर होना सिखाते हैं। यह नक्सलियों के संघर्षों का ही परिणाम है कि अब जंगलों और सुदूरवर्ती ग्रामीण क्षेत्रों में जमीन्दार और सामंती तत्व आदिवासियों और ग़रीबों के साथ ग़लत ढंग से पेश नहीं आ सकते और न ही उनकी बहन-बेटियों को ग़लत नज़र से देखने का दुस्साहस कर सकते हैं। पहले जंगलों से बीड़ी बनाने के काम आने वाला केंदू पत्ता, चिरौंजी जैसा बेशकीमती मेवा, कत्था बनाने के काम आने वाली खैर की लकड़ी और अन्य वनोपज सामंती तत्व और व्यापारी लूट लिया करते थे, पर अब नक्सलियों के भय से ऐसा नहीं कर सकते। इससे आदिवासियों और पहाड़ों पर रहने वाले ग़रीब लोग़ों को लाभ हुआ है। इसलिए वे नक्सलियों का समर्थन करते हैं। स्पष्ट है कि स्थानीय लोग़ों के समर्थन के बिना नक्सली किसी क्षेत्र में टिक नहीं सकते। इसलिए अगर नक्सलवाद का प्रभाव क्षेत्र बढ़ रहा है तो इससे यह समझना चाहिए कि नक्सलवाद के प्रति लोग़ों में समर्थन भी बढ़ रहा है।

वर्तमान व्यवस्था ऐसे भी नक्सलवाद के प्रसार के लिए खाद-पानी मुहैया करा रही है। जहां देश की 77 प्रतिशत आबादी रोज़ाना बीस रुपये अथवा उससे भी कम पर गुजर-बसर करने को मजबूर हो, जहां अनाज क्या पीने का पानी भी आसानी से न मिले, वहां तो नक्सलवाद को फैलना ही फैलना है। बढ़ती महंगाई ने जब मध्यमवर्गीय लोग़ों को सांसत में डाल रखा है, वहां ग़रीब लोग कैसे अपना काम चला रहे हैं, यह सोचने वाली बात है। एक तरफ अमीरी बढ़ रही है, अरबपतियों की संख्या बढ़ रही है, वहीं दूसरी तरफ बेरोज़गारी, गरीबी, कंगाली और फटेहाली भी बढ़ रही है। ऐसे में नक्सलवाद का प्रसार भला कैसे रुक सकता है। इस बात में कोई आश्चर्य नहीं कि आने वाले दिनों में नक्सलवाद कहीं बड़े औद्योगिक शहरों और महानगरों में भी न प्रवेश कर जाये, क्योंकि दबी-कुचली और शोषण की शिकार एक बड़ी आबादी वहां मौजूद है। शहरों और महानगरों में नक्सलवाद के प्रति सहानुभूति रखने वाले बुद्धिजीवियों का एक बड़ा समुदाय है, क्योंकि वह वस्तुस्थिति को समझता है। राजनीतिक रूप से जागरूक युवाओं में भी नक्सलवाद के प्रति आकर्षण बढ़ रहा है। सरकार को यह भी समझना चाहिए कि जो लोग़ नक्सलवादियों का नेतृत्व कर रहे हैं, वे काफी पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी हैं, न कि अनपढ़ घसियारे।

आज सत्ताधारियों के साथ ही हर किस्म की पार्टियां और उनके नेता नक्सलवाद को खत्म करने के लिए परेशान हैं। कांग्रेस अगर नक्सलवाद को नेस्तनाबूद करना चाहती है तो भाजपा भी ऐसा करना चाहती है और इस मामले में सरकार का सहयोग करना चाहती है। आखिर क्यों? इसलिए कि उन्हें पता है कि अगर नक्सलवाद इसी तरह बढ़ता रहा तो उनकी लूट-खसोट वाली राजनीति चल नहीं पायेगी।

**-मनोज कुमार झा**